# कैसे करें इस मन को काबू ?

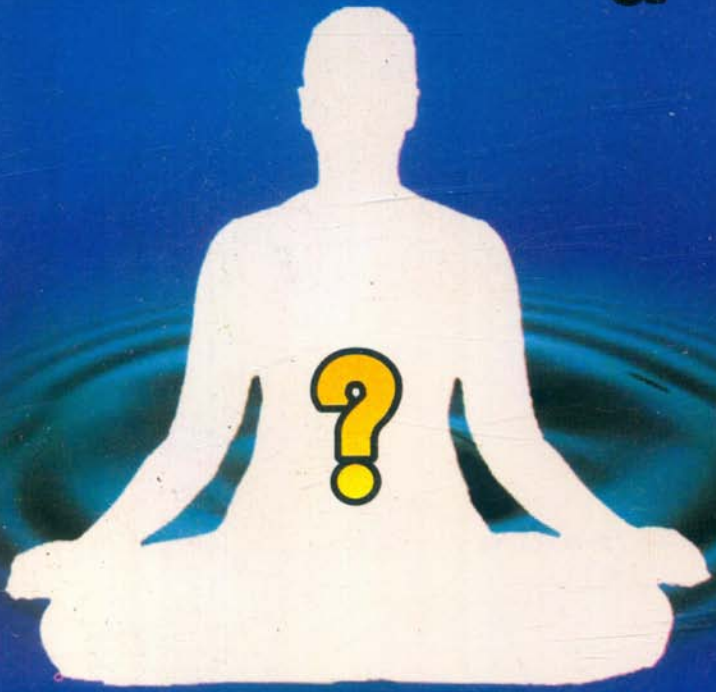

प्रवक्ता :

अध्यात्म युग पुरुष प्रवर्त्तक

**श्री अमर मुनि जी महाराज**

# प्रस्तुत पुस्तक में सहयोगी महानुभाव

श्री मुनी लाल जी मित्तल
सुभाष मित्तल प्रिंटिंग प्रैस, बठिण्डा

समाज भूषण श्री धनराज जैन,
(पूर्व प्रधान जैन सभा, बठिण्डा)

श्री ओम प्रकाश जैन माता कमलावन्ती जैन
(जगराओं)

स्वः श्रीमति प्रीतम देवी जैन
मातेश्वरी श्री कुलभूषण जैन (लाटी), दिल्ली

मास्टर राघव जिंदल
सुपुत्र श्री दीपक जिन्दल, सरहिन्द

एवम् श्री राम लाल जैन सोनी परिवार पदमपुर

# कैसे करें इस मन को काबू?

## मन के संबंध में विभिन्न आध्यात्मिक व मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर आधारित मुनि श्री जी के अमृत प्रवचनों का संकलन


–: प्रवक्ता :–

अध्यात्म युग पुरूष प्रवर्त्तक श्री अमरमुनि जी महाराज

–: संकलन/संपादन :–

युवा मनीषी वरूण मुनि 'अमर शिष्य'

–: प्रूफ संशोधन सहयोगी :–

वैरागी गौतम जैन

श्री महेन्द्र पाल जैन, लुधियाना



–: प्रकाशक :–

गुरू अमर जैन प्रकाशन समिति

e-mail : gajps@yahoo.com



© सर्वाधिकार सुरक्षित



**प्राप्ति स्थान**

**प्रेम सागर जैन**
मै. जैन ट्रेडिंग कं.
गिदड़बाहा, जिला मुक्तसर
(पंजाब) मो. 9814036089

**हीरा लाल जैन**
45, सेक्टर–69
मोहाली (पंजाब)
मो. 9216826222

इस अमूल्य पुस्तक का मूल्य मात्र 30.00 रूपये

# आज ही मंगवाईये...

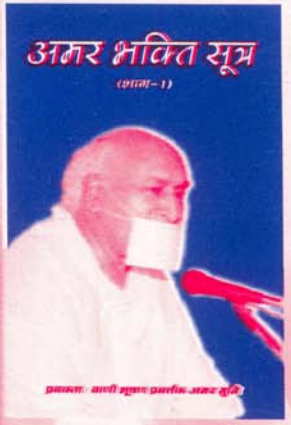


वाणी भूषण प्रवर्त्तक श्री अमरमुनि जी म. के प्रवचनों की जिस पुस्तक से नास्तिकों के दिलों में भी आस्तिकता की घंटियां बजने लगती हैं और जिसने सैंकड़ो-हजारों व शायद लाखों व्यक्तियों के दिलों में भक्ति की अमर ज्योति जगाई तथा उन्हें प्रभु भक्ति की राह दिखाई, वो पुस्तक 'अमर भक्ति सूत्र' आप भी पढ़ कर देखिए । फिर देखिये किस प्रकार आपके जीवन की दशा और दिशा बदलती है।

- भगवान को कैसे पाएं ?
- पापों से किस प्रकार मुक्त हों ?
- क्या शक्ति है- भक्ति की ?
- किसलिए पाया है ये इंसान का चोला ?
- कैसे करें भगवान की भक्ति ?
- कैसे मुड़ें वासना से उपासना की ओर ?

ऐसे कुछ प्रश्नों का समाधान देती है- ये पुस्तक । तो देर किस बात की ? आज ही मंगवाईये ये पुस्तक, आप भी पढ़िये तथा अपने मित्र-प्यारे, निकट संबंधियों को भी उपहार रूप में भेंट कीजिए ये 'भक्ति ग्रंथ'। जिसके छोटे-छोटे सरल-सहज शैली में लिखित प्रवचन उस परम धाम रूपी मंजिल तक पहुँचने की पगडंडियाँ हैं-

# प्रकाशकीय

अध्यात्म युग पुरूष वाणी भूषण प्रवर्त्तक प्रवर श्रद्धेय श्री अमर मुनि जी महाराज की प्रवचन शैली बड़ी ही अनूठी और बेजोड़ है। जब वे प्रवचन करते हैं तो सुनने वाले श्रोता एक अलग ही लोक में पहुंच जाते हैं जहाँ इस लोक की चिंताएँ, तनाव, टेंशन्स स्वतः ही दूर हो जाती हैं ।

मुनि श्री जी की वो अमृत वाणी हर व्यक्ति तक पहुँच सके ऐसा होना तो काफी मुश्किल है क्यूंकि– प्रचार और प्रसार के क्षेत्र में हमारा समाज काफी पिछड़ा हुआ है जो कि– हमारी बहुत बड़ी कमी और कमजोरी है।

लेकिन फिर भी हमने गुरूदेव श्री जी की वाणी को आप तक पहुँचाने के लिए एक बीच का रास्ता निकाला है– इस पुस्तक के माध्यम से । इस श्रृखला में –

गत वर्ष गुरूदेव श्री के अन्तेवासी शिष्य युवा मनीषी ललित लेखक श्री वरूण मुनि जी महाराज ने 'अमर भक्ति सूत्र' नामक पुस्तक का शुभारम्भ किया । जिसे सभी धर्म प्रेमियों ने बहुत ही सराहा। इसी श्रृंखला में श्रद्धालु भक्तों की पुरजोर मांग को देखते हुए हमने प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित करने का विनम्र प्रयास किया है । आशा है– यह भी पाठकों के लिए उपयोगी एवं अनुकरणीय सिद्ध होगी ।

महामन्त्री
(गुरू अमर जैन प्रकाशन समिति)

# अनुक्रम


1. साधना में बाधक है, तो साधक भी है हमारा मन

2. साधना का केन्द्र बिंदु है मन

3. आत्मा और इन्द्रियों का माध्यम है–मन

4. पानी के समान है हमारा ये मन

5. मन को कैसे करें काबू ?

6. अमर हो जाते हैं–मन को मारने वाले !

7. संकल्प बल से दें इस मन को मोड़

8. मन को जीत लेना ही सच्ची विजय

9. 'मन' को 'नम' कर दे

10. गुरु राह दिखा सकते हैं, चलना हमें स्वयं ही होगा...

11. मन साधन है, सर्वोच्च शक्ति है आत्मा

12. मन को वश करने के कुछ मनोवैज्ञानिक उपाय

# साधना में बाधक है, तो साधक भी है हमारा मन

## प्रवचन सार

जब ये मन वासना
में डूबा होता है तो बंधन
का कारण बन जाता है
और जब उपासना
में लग जाता है तो यही मुक्ति
का द्वार बन जाता है।

इस मन रूपी दुष्ट घोड़े को
ज्ञान की लगाम से काबू करो। फिर ये
बुराईयों से हटकर अच्छाईयों की राह
पर चलने लगेगा।

हमारी जितनी भी आत्म कल्याण हेतु साधना होती है उसका एक मात्र उद्देश्य है मन को वश में करना। कारण कि जब तक मन डावांडोल रहेगा तब तक चाहे हम कितनी भी साधना करें, आराधना करें, उपासना करें, उसका कोई अर्थ नहीं, सब व्यर्थ हैं।

मन के संदर्भ में प्रकाश डालते हुए अध्यात्म युग पुरूष प्रवर्त्तक प्रवर श्री अमर मुनि जी महाराज अपने अमृत प्रवचनों के माध्यम से कहते हैं–बन्धुओं! हमारा ये मन उस चंचल घोड़े के समान है जो अपने मालिक को, सवार को विपरीत दिशा की ओर ले जाता है, पतन के मार्ग पर अग्रसर कर देता है।

इस मन रूपी दुष्ट घोड़े को काबू करना है तो ज्ञान की लगाम लगाओ। क्योंकि अभी तुम इस पर सवार नहीं हो, ये तुम पर सवार है और जिस दिन आपने इसे ज्ञान की लगाम के द्वारा काबू कर लिया उस दिन आप इसके इशारों पर नहीं ब्लकि ये आपके इशारों पर चलेगा। हमारे महर्षियों ने कहा है–

मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्ध मोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं, मुक्तयै निर्विषयंमनः।।

अर्थात् हमारा जो मन है वह बंधन का कारण भी है और मुक्ति का भी। जब ये मन विषय-विकारों के प्रति आसक्त होता है तो साधना में बाधक बन जाता है और जब ये वासना से ऊपर उठ कर उपासना में लग जाता है तो यही मन साधक यानि सहायक बन जाता है। आएं इसे एक दृष्टांत द्वारा समझें :-

मगधाधिपति राजा श्रेणिक (बिंबसार) प्रभु महावीर के दर्शन करने जा रहे थे, रास्ते में उन्होंने एक मुनि को ध्यान मग्न देखा। मन के भावों द्वारा रथ पर बैठे-बैठे ही उस ध्यानस्थ मुनि की कठोर साधना के प्रति मस्तक झुकाया और पहुँच गए भगवान महावीर के दरबार में, वंदन किया, धर्मोपदेश सुना, फिर जिज्ञासा रखी-भगवन! मैंने रास्ते में एक ध्यान में लीन मुनि के दर्शन किए थे, यदि वे काल धर्म (मृत्यु) को प्राप्त हो जाएँ तो कौन सी गति में जाऐंगे ?

प्रभु महावीर ने फरमाया-पहली नरक में। प्रभु! वो महामुनि नरक में ? सोचा-हो सकता है मेरे सुनने में गलती हो गई हो, फिर पूछा तो उत्तर मिला-दूसरी नरक में, फिर तीसरी में, फिर चौथी में....करते-करते सातवीं नरक तक पहुँच गए। कारण कि प्रभु महावीर उस मुनि की

मनः स्थिति को अपने ज्ञान द्वारा जान रहे थे।

जहाँ वे मुनि ध्यान मग्न थे–वहाँ दो देव उनकी परीक्षा लेने आए। एक ने कहा–अहो! धन्य है इस महामुनि को। कितनी कठोर साधना कर रहें हैं। दूसरे ने कहा– अरे खाक साधना है! ये तो भगोड़ा है भगौड़ा, छोटे से बेटे को राजा बनाकर स्वयं राजपाट छोड़ के भाग आया, वहाँ किसी शत्रु राजा ने चढ़ाई कर दी, अब बेचारा वो अबोध बालक भला क्या जाने युद्ध करना ?

मुनि बेशक ध्यानस्थ हैं, मगर कानों ने तो अपना काम करना ही है। जब ये सुना तो एकदम ख्याल आया–अरे! मेरे बेटे पर शत्रु ने चढ़ाई कर दी ? मैं दूर हूँ तो क्या हुआ, पर हूँ तो जिंदा। देखता हूँ–शत्रु क्या बिगाड़ता है! मेरे होते उसकी क्या औकात!

बस मन के द्वारा ही पहुँच गए युद्ध के क्षेत्र में और लग गए युद्ध करने। मन के भावों और विचारों की तलवार द्वारा सैंकड़ों को मार दिया, हजारों को काट दिया, पर शत्रु तो बड़ा बलवान है, बढ़ता ही जा रहा है।

अरे! मेरा ये सुदर्शन चक्र क्या काम आएगा ? उसी को घुमाने लगे। अचानक उंगली मस्तक से टकराई, ध्यान खुला, ओह ताज तो दूर मेरे सिर पे तो बाल भी नहीं, मैं तो मुनि बन चुका हूँ। पर किस बात का मुनि ? मुनि हो

कर मैं युद्ध कर रहा हूँ ? अरे कौन बेटा, किसका राज्य ? जब थूक ही आया तो दोबारा क्या चाटना। तूने युद्ध ही करना है तो अपने कर्मों से कर।

ध्यान अब मोड़ ले चुका है। राजा श्रेणिक ने कुछ देर बाद अपना प्रश्न फिर दोहराया–प्रभु अब वो मुनि मृत्यु को प्राप्त हों तो कहाँ जाएंगे ? राजन! छठी नरक में। अब ? पांचवीं में। करते–करते पहली नरक तक आ गए।

और उससे भी ऊपर उठ गए–पहला देवलोक, दूसरा, तीसरा चलते–चलते, बढ़ते–बढ़ते छब्बीसवें देवलोक तक जा पहुँचे। और देखते क्या हैं ? तभी देव दुन्दुबी बज उठी 'अहो ज्ञानं, अहो ज्ञानं।' प्रभु ये केवल ज्ञान, ये ब्रह्म ज्ञान किसे हुआ ? कि– उसी प्रसन्न चन्द्र महामुनि को।

समझे ? मन की गति कितनी प्रबल है, ये यहीं बैठे–बैठे स्वर्ग के नजारे दिखा दे और यहीं बैठे साक्षात नरक के दर्शन करा दे। तो इस मन रूपी दुष्ट घोड़े को ज्ञान की लगाम के द्वारा संभालो, जो संभालेंगे वे सुख पांएगें। शेष फिर...

# साधना का केन्द्र बिंदु है मन

## प्रवचन सार

दुनियाँ का सबसे बड़ा
'योद्धा' वो है जिसने
अपने मन को जीत लिया।

ये मन चाबी के समान है जिसके द्वारा
अच्छाईयों का ताला खोल भी सकते हैं
और बुराईयों का द्वार बंद भी कर सकते हैं।

हमारे यहाँ एक बहुत ही प्रसिद्ध कहावत है 'मन के जीते जीत है, मन के हारे हार' यानि जिसने अपने मन को जीत लिया समझो उसने संसार को जीत लिया और जो अपने मन से ही हार गया समझो वह सारी दुनियाँ से हार गया क्योंकि जो अपने मन को ही नहीं जीत पाया वो भला दुनियाँ को क्या जीत पाएगा ? और दुनियाँ भले ही जीत ले जब तक वो अपने मन को न जीत पाएगा तब तक उसकी हर जीत अध्यात्म दृष्टि से हार ही होगी।

मन के विषय में प्रकाश डालते हुए जैन धर्म दिवाकर प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी महाराज कहते हैं– प्यारी आत्माओं! प्रभु महावीर ने फरमाया है जिसने एक को जीत लिया उसने पाँच को जीत लिया, जिसने इन छहों को जीत लिया उसने दस को जीत लिया। आप कहेंगे–महाराज ये पहेली कुछ समझ नहीं आई।

आओ इसे समझने का प्रयास करें। जिसने एक यानि मन को जीत लिया समझो उसने पाँच इन्द्रियों को जीत लिया और जिसने इन छहों को जीत लिया समझो उसने चार कषाय यानि क्रोध, मान, माया और लोभ को भी जीत लिया। कहने का अभिप्राय हमारी साधना का केन्द्र बिन्दु है–मन। कवि ने कहा है :–

'चन्दन चाबी एक है, है फेरन में फेर।
बंद करे खोले यही, ताते सतगुरू हेर।।'

यानि उन्होंने मन को चाबी की उपमा दी है। इस मन रूपी चाबी के द्वारा हम अच्छाईयों का ताला खोल भी सकते हैं और बुराईयों का द्वार बंद भी कर सकते हैं। इस ताले को सही ढंग से, ठीक तरीके से खोलने और बंद करने का रास्ता बताते हैं–गुरू। इसे समझने में एक प्रेरक प्रसंग उपयोगी होगा। आएँ पहले उसी की चर्चा कर लें–

किसी गाँव के बाहर गुरू–चेला आकर ठहरे। चेला भिक्षा के लिए चला। जिस द्वार पे जाता, अलख जगाता, एक रटा रटाया वाक्य बोलता, 'राम नाम सत् है, जो बोले सो गत् है' ये क्रम चलता रहा। एक दिन जब उसने एक घर के बाहर अलख जगाई तो वहाँ दरवाजे पर पिंजरे में एक तोता लटका हुआ था।

उसने कहा–महाराज! आप कहते हो राम नाम सत् है, जो बोले सो गत् है। मैं तो सुबह से शाम तक राम–राम बोलता हूँ, मेरी तो गति हुई नहीं ? शिष्य ने सुना, सोचा बात तो यह ठीक कहता है। कहने लगा– भाई! मैं कल अपने गुरू जी से पूछ कर बताऊँगा।

वापिस जंगल में गुरू के पास आया, सारी बात सुनाई, सुनकर गुरू जी गिर पड़े, जैसे बेहोश हो गए हों। शिष्य डर गया, पता नहीं गुरू जी को क्या हो गया ? पानी के छींटे डाले, होश आई, खाना खिलाया, संध्या–पूजा की, और सो गए। अगले दिन चेला फिर चला भिक्षा के लिए।

जब उसी घर जाकर अलख जगाई तो तोते ने कहा–क्या बात! गुरू जी से पूछा नहीं ?

शिष्य ने कहा भाई! पूछा तो था पर गुरू जी तो एक दम बेहोश हो कर गिर गए। तोता मुस्कुराया, कहने लगा– ठीक है, रहस्य मेरी समझ में आ गया, अब आप जा सकते हो। शिष्य अपनी भिक्षा लेकर चला गया। उधर तोता पिंजरे में निढ़ाल पड़ गया, थोड़ी देर में मालिक आया, देखा– तोता बेहोश हो गया है। क्या करे बेचारा! गर्मी ही बहुत पड़ रही है।

उसने उस पर पानी के छींटे मारे और पिंजरे से बाहर निकाल छांव में रख दिया, सोचा–बेचारे को होश आ जाएगी तो पिंजरे में रख दूंगा। तोते ने एक आंख खोलकर देखा कि मालिक दूर चला गया, मौका सुनहरी है, उसने वहाँ से मारी उडारी और उड़ते–उड़ते वहीं आ गया जहाँ वो शिष्य था। कहने लगा–भाई! राम नाम सत् है, जो बोले सो गत् है पर सुन–

'चाबी गुरां दे हत्थ है'

तो प्यारी आत्माओ! संसारी और सन्यासी में यही अंतर है। संसारी मन का गुलाम होता है और 'मन' संत का गुलाम होता है। इस मन को वश करने की ही तो राह बताते है–संत। पर आप इसे वश करना ही नहीं चाहते। आप कहेंगे कैसे ? उसकी चर्चा अगले प्रवचन में करने का प्रयास करूंगा–

# आत्मा और इन्द्रियों का माध्यम है-मन

## प्रवचन सार

आपको पैसे से
जितना प्यार है, उतना
प्रभु से नहीं, जिस दिन
आपका प्रभु से प्यार
हो गया, फिर ये मन
भटक नहीं सकता,
गलत राह पर चल
नहीं सकता।

जिसने अपने मन को जीत लिया,
समझो वो बादशाहों का भी
बादशाह हो गया।

मन के संबंध में हमने पिछले प्रवचन में चर्चा की थी, उसी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए वाणी के जादूगर, प्रवचन भूषण, प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी महाराज कहते हैं– मन टिकता है, मन को टिकाना इम्पॉसिबल नहीं है, असंभव नहीं है। वो तो स्वयं कहता है आई एम पॉसिबल।

मन काबू होता है अगर आप उसे काबू करना चाहो। सच बोलना जब हरी–हरी कन्नी के पाँच–पाँच सौ के नोट गिन रहे होते हो, तब ये कहीं भटकता है ? जब मेरी बहनें ज्वैलरी बॉक्स (गहनों की पेटी) खोल कर बैठती हैं, तब उनका मन कहीं डोलता है ?

तो माला फेरते, भक्ति करते नींद क्यूं आती है ? मन डावांडोल क्यूं होता है ? इधर उधर क्यूं भटकता है। क्यूंकि अभी हमें भक्ति में वो रस नहीं आया, वो विश्वास नहीं आया। जिस दिन आपको विश्वास आ गया, उस दिन आपका ये मन भटक नहीं सकता, गलत कर नहीं सकता।

हमारा ये 'मन' इन्द्रियों और आत्मा के बीच माध्यम का काम करता है। इसे एक उपमा द्वारा समझें। जैसे एक फैक्टरी है, उसमें मालिक, मुनीम और कर्मचारी

हैं। ऐसे ही हमारा ये आत्मा मालिक है, मन मुनीम है और इन्द्रियां नौकर चाकर हैं। मुनीम जो भी बोली लगाता है उसका लाभ हानि मालिक को होता है। मालिक अगर सावधान है तो मुनीम को हानि से लाभ की ओर लगा सकता है। यही अवस्था हमारी है।

मन मुनीम अच्छाईयों और बुराईयों की बोलियाँ लगाता है पर अगर आत्मा रूपी मालिक सावधान है तो वो उसे बुराई से हटा कर अच्छाई की तरफ लगा सकता है। बस जिसका आत्मा रूपी मालिक जागृत है वो संत है और जिसकी आत्मा सोई हुई है वो संसारी है।

राजा घोड़े पर सवार होकर जा रहा था। देखा रास्ते में कंकर पत्थरों के ढेर पर एक सन्यासी बैठा है, जो अभी अभी सोकर उठा था। राजा ने सोचा– ये बेचारा कंकरियों पे सो रहा है ? इसके मन में ख्याल आता होगा कि–

'अब के फंसे छूटेंगे,
और बैठे मिट्टी कूटेंगे।'

यानि ये भी सोचता होगा जिंदगी में खामखाह का पंगा ले लिया। फिर अपना ख्याल आया–अरे मेरे यहां नरम नरम गद्दे, नौकर चाकर, सुख के सारे साधन, कहाँ ये, और कहाँ मैं ? पहले जो दया जागी थी उसका स्थान अब अहंकार ने ले लिया। बड़ा इतरा कर पूछा–महाराज! कहो कैसी बीती ? वो तो फक्कड़ फकीर थे, कहा–राजन! कुछ तेरे जैसी गुजरी, कुछ तेरे से अच्छी गुजरी। हैं, ये क्या ? कुछ मेरे जैसी और, कुछ मेरे से अच्छी ? कैसे ?

फकीर ने कहा–सुन राजन! तेरे जैसी तो यूं बीती कि जब तुझे नींद आई तो पता नहीं तूं कहा पड़ा है, और मुझे नींद आई तो मुझे भी पता नहीं कि मैं कहां पड़ा हूँ। गद्दों पे कि कंकर पत्थरों पे। ये तो हुई तेरे जैसी। तेरे से बढ़िया कैसे बीती, वो भी सुन। तूं जागा तो तेरे साथ दुनियाँ की चिंता जागी, उसे सजा देनी है, उसको फांसी पे टांगना है, शत्रु पे चढ़ाई करनी है अगैरा–वगैरा और मैं जागा तो मेरे साथ मेरे प्रभु का चिंतन जागा।

राजा ने सोचा यूं ही रटी रटाई बातें बोल रहा होगा। कहने लगा–चलो महाराज! आपको महलों में ले चलूं, खूब सेवा होगी। सन्त तो पहुंचे हुए थे। सोचा इसे नशा है अपनी सत्ता का, राजा होगा अपने घर का, मैंने राजा से लेना नहीं, रंक को पल्ले से कुछ देना नहीं।

कहने लगे–राजन! तू मेरी क्या सेवा करेगा, तूं तो मेरे नौकरों का नौकर है। अब तो बड़ी करारी चोट पहुँची राजा के अभिमान को। कहने लगा–महाराज! आपको पता है किससे बात कर रहे हो ?

संत मुस्कुराए, कहने लगे–राजन! तू मन और इन्द्रियों का बंधा है, उनका गुलाम है और वो मेरे गुलाम हैं। इसलिए कहा तू तो मेरे नौकरों का नौकर है। राजा चरणों में झुक गया। समझे ? जिसने अपने मन को जीत लिया वो बादशाहों का बादशाह हो गया।

# पानी के समान है हमारा ये मन

## प्रवचन सार

इस मन का पानी
के समान न तो अपना कोई रंग
है न आकार। बस
अच्छाईयों का रंग मिलाएंगे
तो अच्छा बन जाएगा
और बुराईयों का रंग डालेंगे
तो ये बुरा बन जाएगा।

धर्म स्थान से भी अधिक
महत्व धर्म भावना का है। क्यूंकि –
'मन चंगा ते कटौती विच गंगा'

हमारे इस मन की गति बड़ी विचित्र है। जिसका पार पाना कोई बच्चों का खेल नहीं है। इसी मन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए अध्यात्म युग पुरूष प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी महाराज अपने अमृत प्रवचनों में फरमाते हैं कि–

हमारा ये मन पानी के समान है। जैसे पानी का अपना ना कोई रंग होता है, ना आकार। जो रंग मिला दें उसी रंग का बन जाता है, जिस बर्तन में डाल दें, वही आकार ले लेता है, यही अवस्था है हमारे इस मन की। इसका भी अपना ना कोई रंग है, ना ही कोई आकार। अच्छाईयों का रंग डाल दें तो ये अच्छा बन जाता है और बुराईयों का रंग मिला दें तो ये बुरा हो जाता है। जैसे संस्कार रूपी बर्तन में डाल दें वैसा ही ये आकार ले लेता है।

आपने देखा होगा–पानी हमेशा नीचे की ओर जाता है। ऐसे ही इस मन का स्वभाव भी नीचे की ओर, पतन की ओर जाना है। पर अगर इसी मन रूपी पानी को

तप अग्नि का संसर्ग मिल जाए तो ये भाप बन का ऊपर उठना शुरू कर देता है, उर्ध्वगामी बन जाता है। इस मन की गति बड़ी प्रबल है। एक वैज्ञानिक अनुसंधान के अनुसार प्रकाश की गति एक सैकिण्ड में 1 लाख 86 हजार मील की है, विद्युत यानि बिजली की गति 2 लाख 88 हजार मील की है और मन की गति एक सैकिण्ड में 22 लाख 65 हजार 120 मील की है।

ये तो वैज्ञानिकों का मत है। लेकिन हमारे शास्त्र, धर्म ग्रंथ तो मन की गति इससे भी तीव्रतर मानते हैं। क्यूंकि ये मन कभी स्वर्ग में पहुँच जाता है और कभी नरक की सैर कर आता है। आप कहेंगे–कैसे ? दूर जाने की आवश्यकता नहीं, आप अपने व्यवहारिक जीवन में ही देख लीजिए–बैठे होते हैं सत्संग में, मन होता है दुकान पे। यहीं बैठे–बैठे ही कभी दिल्ली पहुँच जाता है और कभी अमेरिका। आईए एक प्रेरक प्रसंग द्वारा समझे। प्रसंग भी कोई मन घड़ंत नहीं, 'वायु पुराण' से सबंधित है–

वृत, सुवृत नामक दो भाई, विचार करते हैं– कृष्ण जन्माष्टमी आ रही है। अपने नगर में तो हर वर्ष ही देखते हैं, इस बार प्रयाग राज की प्रसिद्ध जन्माष्टमी देखनी चाहिए। चल पड़े और चलते–चलते पहुँच भी गए प्रयागराज।

ज्यूं ही नगर में पहुँचे, तभी बारिश शुरू हो गई। इधर-उधर देखा, एक सूचनापट (बोर्ड) नजर आया, जिस पर लिखा था- 'जिंदा नाच'/ छोटा भाई कहने लगा- चलो, नाच घर में चलें। बारिश से भी बच जाएंगे और नाच भी देख लेंगे। पर बड़ा भाई कहने लगा- ना भाई! चाहे कुछ हो, मैं तो माधव जी के मंदिर में ही जाऊँगा। छोटा भाई बोला- आपने जाना है तो जाओ, मुझसे तो बारिश में भीगा नहीं जाता।

आखिर जी छोटा भाई नाच घर में चला गया और बड़ा बेचारा किसी तरह भीगता-भागता मंदिर में पहुँच गया। वहाँ कीर्तन हो रहा था-'हरे रामा, हरे कृष्णा।' वो थोड़ी देर तो झूमा पर फिर दिमाग घूमा-अरे कहाँ फंस गया ? तेरा भाई बढ़िया रहा जो मजे से नर्तकी का नाच देख रहा होगा। बैठा मंदिर में है पर वहीं उसे नाच घर के नजारे नजर आ रहे हैं।

उधर छोटा भाई, जो नाच घर में बैठा है, पर्दा हटा, और मंच पे एक अर्ध नग्न युवती थिरकती हुई आई। वो नाच देखते हुए विचार करता है-अरे ये भी कोई जीवन है ? चंद चांदी के टुकड़ों के लिए ये अपने शरीर की नुमाईश कर रही है। ये तो नारी समाज पर कलंक है। तूं भी कहाँ आके फंस गया। धन्य है तेरा वो भाई, जो माधव

जी के मंदिर में बैठा प्रभु का कीर्तन कर रहा है। उसे वहीं बैठे कीर्तन की हिलोरें आ रही हैं और प्रभु के दर्शन हो रहें हैं।

आयु दोनों की पूरी हो रही है, नाटक शाला में देवदूत पहुँच गए देव विमान लेकर, कहने लगे–चल भाई हमारे साथ। कहाँ ? वैकुण्ठ में। मैं! और वैकुण्ठ में ? शायद आप गलती से आ गए, मेरा बड़ा भाई बैठा है माधव जी के मंदिर में, आप उसे लेने आए होंगे। देवदूत कहने लगे–नहीं। हम तो आपको ही लेने आए हैं। आप बैठे बेशक़ नृत्य शाला में हो पर आपका मन प्रभु भक्ति में लीन है।

उधर बड़े भाई के पास यमदूत पहुँच गए। कहने लगे–चल ओए। हैं ? कहाँ ? कहाँ क्या, नरक में और कहाँ। नरक में ? तुम्हें पता नहीं मैं कहाँ बैठा हूँ ? यमदूत कहते–शरीर से चाहे तूं माधव जी के मंदिर में बैठा है पर तेरा मन तो नर्तकी के नाच में मग्न है।

समझे आप ? ये है मन की गति। धर्म स्थान से भी अधिक महत्व धर्म भावना का है। बस जीवन का कल्याण चाहते हो तो **"इस मन की गति संभालिए, प्रभु की ओर डालिए। धोना जो चाहे, तो मन को धो ओम् जपो, प्रभु नाम जपो।।"**

# मन को कैसे करें काबू?

## प्रवचन सार

इस
मन को वश में
करने के लिए अभ्यास
और वैराग्य का
सहारा
लो

मन काबू नहीं आता तो
अधीर मत बनों, धैर्य रखो,
लगे रहो साधना की राह पर,
सिद्धि जरूर मिलेगी।

अधिकतर साधकों की ये शिकायत होती है कि–महाराज जब भी हम साधना करने लगते हैं, मंत्र–जाप करते हैं तो मन नहीं लगता, इसे कैसे काबू करें ? इसी समस्या का समाधान करते हुए जैन धर्म दिवाकर प्रवर्त्तक प्रवर श्री अमर मुनि जी महाराज अपने प्रवचनों में फरमाते हैं कि– तुम जो ये प्रश्न करते हो, ये कोई नया नहीं है। बहुत लम्बे समय से चला आ रहा है। अर्जुन ने भी श्री कृष्ण से यही प्रश्न पूछा था–

**'चंचलं ही मनः कृष्ण, प्रमाथि बलवद् दृढम्।**
**तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम्।।'**

ये मन जो बंदर के समान चंचल है, हाथी के समान बलवान और दृढ है, जो आदमी को मथ देता है, जिसे वश करना वायु को पकड़ने के समान दुष्कर है। हे प्रभु ! मैं इसे काबू करना चाहता हूँ, कैसे करूँ ? तब श्री कृष्ण ने कहा–

**'अभ्यासेन तु कौन्तेय ! वैराग्येन च गृहयते'**

यानि हे कुन्ती पुत्र! इसे अभ्यास और वैराग्य से वश में करो। अब प्रश्न आता है कि–अभ्यास कैसा हो ? किसका हो ? क्यूंकि अभ्यास तो एक चोर भी करता है, जेबकतरा भी करता है, तो पहली बात आपका अभ्यास

सद्अभ्यास होना चाहिए। सत्संग करो, सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करो। जब आप सत्संग या स्वाध्याय करेंगे तो आपके भीतर वैराग्य की धारा बहेगी। और जब वैराग्य की परम पराकाष्ठा आ जाएगी तब **'यत्र-यत्र मनोयाति, तत्र-तत्र समाधये'** जहाँ-जहाँ आपका मन जाएगा वहीं आपको समाधी की प्राप्ति हो जाएगी। पर ये अंतिम सीढ़ी है, पहले सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ना होगा। अगर सीधे ही चौबारे पर पहुँचना चाहो तो ज्यादा संभावना हाथ-पाँव टूटने की है।

**'अस्थिर मन योगी बने, सचमुच में उपहास।**
**पंगु कहे मैं भी चलूं, पैदल कोस पचास।'**

वो व्यक्ति, जिसके पांव नहीं और कहे कि मैं भी 50 कोस पैदल चल सकता हूँ तो जैसे वो उपहास का पात्र बनता है ऐसे ही अस्थिर मन वाले साधक की अवस्था होती है।

महार्षि वेद व्यास शिष्यों को पढ़ा रहे थे। पढ़ाते-पढ़ाते 'मन' का प्रसंग आ गया और वो कहने लगे-एक बाप को अपनी जवान बेटी के साथ, एक नौजवान भाई को अपनी जवान बहन के साथ एकांत में नहीं बैठना चाहिए। क्यूं ? क्यूंकि ये मन बड़ा चंचल है।

उनके प्रमुख शिष्य जयमणि ने कहा-गुरू जी! और सारी बातें तो जंच गई पर ये नहीं जची। क्या आदमी इतना गया-बीता है कि उसका मन अपनी बेटी या बहन पर ही खराब हो जाए ? महार्षि वेद व्यास ने कहा-देखो, अब तो संध्या का समय हो रहा है, इस विषय पर फिर चर्चा करेंगे।

सबने अपने पोथी-पन्ने समेटे और अपनी-अपनी कुटिया की ओर चल दिए। जयमणि भी चले, ज्यूं ही वो अपनी कुटिया के नजदीक पहुँचे तो उन्हें एक नारी के रोने की आवाज सुनाई दी। जयमणि उस ओर बढ़े, देखा-एक नवयुवती, सोलह श्रृंगार सजी हुई, रो रही है। पूछा-बेटी! क्या बात ? तुम क्यों रो रही हो ? उसने कहा धर्म पिता! मैं अपने पति के साथ पीहर से ससुराल जा रही थी, मुझे प्यास लगी तो वो पानी लेने चल दिए। तब के गए, अभी तक नहीं लौटे, अब बताओ मैं कहाँ जाऊँ ?

जयमणि ने कहा-पुत्री! घबराओ मत, मेरे साथ चलो। अपनी कुटिया में उस युवती को ले आए, खाने को कुछ फल दिए, पीने को पानी दिया, कहा- बेटी तुम द्वार का सांकल लगा कर अंदर आराम करो, मैं बाहर बैठ कर जप करता हूँ और सुनो अब अंधेरा होने लगा है, अंधेरा पाप का साथी है। यहाँ रात को विचारों के राक्षस बहुत आते हैं। अगर कोई मेरा नाम लेकर भी द्वार खट्खटाए तो खोलना मत! अच्छा धर्म पिता। लड़की ने द्वार बंद कर लिया।

बाहर जयमणि बैठे माला फेर रहें हैं, माला का मनका हाथ में घूम रहा है मन का मनका कहीं और ही घूम गया है। अरे! इतनी सुंदर लड़की तेरे चुंगल में फंसी हुई है और तूं ये सुनहरी मौका गंवा रहा है ? चल, बहती गंगा में हाथ धो ले। उठे, चले पर अंदर से आवाज आई-अरे नीच! तूं इतना गिर गया ? जिसे बेटी बनाया उसके प्रति ही बुरे ख्याल ला रहा है मन में ? नहीं, वापिस आकर बैठ गए पर थोड़ी देर बाद फिर मन ने अपना काम शुरू किया और आत्मा की आवाज का गला घोंट कर जयमणि चल दिए।

कुटिया का द्वार खट्खटाया, अंदर से आवाज़ आई–कौन ? मैं जयमणि। नहीं, द्वार नहीं खुलेगा। अरे मैं स्वयं इस कुटिया का मालिक हूँ जयमणि, द्वार खोलो! चाहे कोई हो, द्वार नहीं खुलेगा। अच्छा! कोई बात नहीं। ये झोपड़ी तो मेरी ही बनाई हुई है ना! चढ़े छत पर, घास–फूस हटाया और अंदर मारी छलांग तो देखते क्या है–एक चौंकी पर स्वयं महर्षि वेद व्यास बैठे अपनी सफेद दाढ़ी को सहला रहे हैं। मुस्कुरा कर कहने लगे–आ गया बच्चा ? गुरू जी ! ये क्या ? बेटा समझ गया ? हाँ गुरू जी! समझ गया, ये मन बड़ा चंचल है।

तो प्यारी आत्माओं! इसलिए कहा है–**'मन के मते न चालिए, मन के मते अनेक'** पर घबराने की जरूरत नहीं। अभ्यास और वैराग्य पूर्वक साधना में लगे रहो, एक दिन सिद्धि जरूर मिलेगी।

**'धीरे–धीरे मोड़ तूं, इस मन को,**
**इस मन को तूं, इस मन को।**
**मन मोड़ा फिर डर नहीं,**
**कोई दूर प्रभु का घर नहीं।।**
**धीरे–धीरे मोड़ तूं, इस मन को,**
**इस मन को तूं, इस मन को।'**

बस आज इतना ही.....

# अमर हो जाते हैं- मन को मारने वाले!

## प्रवचन सार

तन बूढ़ा हो जाता है पर मन
बूढ़ा नहीं होता। और जो
अपने मन को मार लेते
हैं वो फिर अमर हो जाते हैं।

तन से पाप नहीं
करते पर मन से
तो करते हैं ना ?
वो ज्यादा खतरनाक है।
इनसे बचने का
प्रयास करो।

तन बूढ़ा हो जाता है, इन्द्रियाँ बूढ़ी हो जाती हैं, जीवन बूढ़ा हो जाता है मगर आदमी का मन कभी बूढ़ा नहीं होता। कामनाएँ और वासनाएँ कभी बूढ़ी नहीं होती और जिसका मन बूढ़ा हो जाता है फिर उसके जीवन में सन्यास घटित होने में कोई देर नहीं लगती। जिसकी कामनाएँ और वासनाएं मर जाएँ फिर वह आदमी दुनियाँ में कभी नहीं मरता। ऐसा आदमी राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर की तरह अमर हो जाता है। दुनियाँ में केवल वे मरते हैं जो अपने मन को नहीं मार पाते।

मन के संदर्भ में प्रकाश डालते हुए अध्यात्म युग पुरूष प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी महाराज फरमाते है कि-असली समस्या मन है। इन्द्रियाँ तो केवल स्विच हैं, मेन-स्विच तो मन ही है। जब कभी भी कोई विश्वामित्र अपनी तपस्या और साधना से फिसलता और गिरता है तो इसके लिए दोष हमेशा मेनका को दिया जाता है, जबकि दोष 'मेनका' का नहीं, आदमी के 'मन का' होता है। कोई भी आदमी मेनका के आकर्षण की वजह से नहीं, अपितु

अपने मन की कमजोरी की वजह से गिरता है। मन बड़ा खतरनाक है। दुनियाँ में 10 चीजें चंचल हैं। दस मकार चंचल हैं।

"मनो मधुकरो मेघो, माननी मदनो मरूत्।
मर्कटो मा मदो मत्स्यो, मकारा दश चंचला।।"

आदमी का मन, मधुकर (भौंरा), मेघ (बादल), मानिनी (स्त्री), मदन (कामदेव), मरूत (हवा), मर्कट (बंदर), माँ (लक्ष्मी), मद (अभिमान), और मत्स्य–ये दस चीजें दुनियाँ में चंचल हैं, और इनमें भी आदमी का मन सर्वाधिक चंचल है। इस मन को समझना बड़ी टेढ़ी खीर है। पल–पल में बदलता है, क्षण में फिसलता है। एक पल में एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ जाता है तो अगले ही पल बंगाल की खाड़ी में उतर जाता है। इसलिए मैं इसे, 'मकार' नहीं 'मक्कार' कहता हूँ।

शास्त्रों में वर्णन आता है–तन्दुल मच्छ का। तन्दुल कहते हैं–चावल को। उस मच्छ का शरीर चावल के आकार जितना होता है। रहता कहाँ है ? मगरमच्छ की आँख की पलक पर। उसके पास पाँच इन्द्रियाँ होती हैं, मन भी होता है लेकिन आयु केवल 2 घड़ी यानि 48 मिनट की होती है। पर उस दो घड़ी की आयु में ही वो 'मन के द्वारा' इतने चीकने यानि कठोर कर्म बाँध लेता है कि–मरने के बाद वो सातवीं नरक में जाकर पैदा होता है। आप कहेंगे–कैसे ?

जब मगरमच्छ समुद्र में मुँह खोल कर मस्ती में पड़ा होता है तो लहरों के वेग में सैंकड़ों-हजारों मछलियाँ उसके मुख में आती-जाती हैं। वो तंदुल मच्छ विचार करता है कि-ये मगरमच्छ कितना आलसी है। अगर इसकी जगह मैं होता तो एकदम से मुँह बंद कर लेता और एक भी मछली को बाहर न जाने देता।

कर-करा कुछ नहीं सकता, क्यूंकि उसका शरीर ही चावल के दाने जितना है पर केवल मन के विचारों द्वारा वो कितने काले पाप कर्म इक्कट्ठे कर लेता है कि उनका भुगतान उसे नरक में जाकर देना पड़ता है। कुछ लोग कहते हैं-महाराज! जब से जन्म लिया है, सूरत संभाली है, हमने कोई पाप नहीं किया, किसी का बुरा नहीं किया। फिर भी न जाने क्यूं हमारे जीवन में दुःख आते रहते हैं ?

ठीक है, आपने शरीर से किसी का बुरा नहीं किया पर मन से तो कितनी ही बार अपने द्वेषियों का बुरा सोचते हैं। कई लोग तो मन में भावना भाते हैं-हे प्रभु! हमारे मकान की दीवार भले ही गिर जाए लेकिन हमारे पड़ौसी की भैंस उसके नीचे आकर जरूर मर जाए। ये क्या है ? ये भी तो एक तरह का पाप ही है ना ? प्रभु महावीर ने इसे भाव हिंसा कहा है। द्रव्य हिंसा-जो बाहर से किसी को दुःख दिया जाए और भाव हिंसा-जो भीतर से वार किया जाए।

और ये भी याद रखो-बाहर की अपेक्षा भीतर की चोट ज्यादा खतरनाक होती है। बाहर जख्म है आप दवा लगा

लेंगे, मरहम पट्टी कर लेंगे पर अगर भीतर जख्म हो जाए तो उसके लिए ज्यादा जहमत उठानी पड़ती है। इसलिए प्रभु महावीर ने द्रव्य हिंसा की अपेक्षा भाव हिंसा को ज्यादा हानिकारक बताया है।

भाव हिंसा कहाँ पैदा होती है ? मन के भीतर। और ये भी हम जानते हैं कि जो मन में पैदा होता है वही शरीर के द्वारा क्रिया रूप में बाहर घटित होता है। हम कोई अच्छा काम करते हैं तो उसकी पृष्ठ भूमि भी मन के भीतर ही तैयार होती है और अगर कोई बुरा काम करते हैं तो उसका नींव पत्थर भी हमारे मन के धरातल पर ही टिका होता है।

तो आप अपने मन को शुभ में भी जोड़ सकते हैं और अशुभ की ओर भी अपने आपको मोड़ सकते हैं क्यूंकि आप मालिक हैं, गुलाम नहीं। तो फिर देर किस बात की ? उठिए, जागिए और तोड़ डालिए परतंत्रता की इन बेड़ियों को। आज की नव प्रभात आपको जीवन की नई और सही दिशा पर बढ़ने की प्रेरणा दे रही है....

# संकल्प बल से दें इस मन को मोड़

## प्रवचन सार

कौन कहता है–
मन वश में नहीं आता,
काबू नहीं होता ? आवश्यकता है तो
केवल आपके दृढ़ संकल्प
बल की।

मन को जीतने का अर्थ
ये नहीं कि– घर बार
छोड़ सन्यासी हो जाएँ।
कपड़े रंगने से कुछ न होगा जब
तक कि मन को प्रभु भक्ति
में न रंगा जाए।

पिछले प्रवचन में हम मन के संदर्भ में चर्चा करते हुए बात कर रहे थे शुभ और अशुभ की यानि हम अपने मन के द्वारा पुण्य भी पैदा कर सकते हैं और पाप भी। इसे यूँ समझें जैसे विद्युत है, जिसे आम भाषा में हम बिजली कहते हैं, उसके द्वारा हम हीटर भी चला सकते हैं और ए.सी. भी। ऐसे ही ये मन भी एक ऊर्जा है, शक्ति है, जिसे हम अच्छाईयों में भी लगा सकते हैं और बुराईयों में भी।

एक प्रेरक प्रसंग इस बात को समझने के लिए उपयोगी होगा– एक सेठ अपने मकान की छत पर टहल रहा था। एक हट्टा–कट्टा आदमी आया और उसने सेठ को नीचे आने का इशारा किया। सेठ ने सोचा–शायद कोई काम होगा। नीचे उतर कर आया, पूछा– क्या बात है ? वो कहने लगा– कुछ दो। सेठ कहता है– अरे भले आदमी कुछ मांगना ही था तो पहले बोल देता, मुझे यूं ही नीचे बुलाया। उस भिखारी ने कहा– अजी मैंने सोचा कोई सुन न ले।

सेठ बिना कुछ बोले चुपचाप ऊपर सीढ़ियां चढ़ गया और उसी तरह टहलने लगा। थोड़ी देर तो वो भिखारी खड़ा रहा, इन्तजार करता रहा, पर कब तक करता? आखिर थक कर फिर सेठ की तरफ देखकर हाथ फैलाए। सेठ ने इशारा करके उसे ऊपर बुलाया। भारी भरकम शरीर था उस भिखारी का, बेचारा हाँफता हुआ किसी तरह ऊपर पहुँचा, कहा– जी कुछ दो। सेठ ने कहा–मैंने कुछ नहीं देना। वो कहने लगा– कमाल है! जब कुछ देना ही नहीं था फिर बेकार ही मेरी एक्सरसाईज करवाई, ऊपर से ही मना कर देते। सेठ ने मुस्कुरा कर कहा– मैंने सोचा कोई सुन ना ले। अरे जब तू भिखारी होकर मुझे नीचे बुला सकता है तो क्या मैं दाता होकर तुझे ऊपर नहीं बुला सकता? समझे कुछ?

यही मन की अवस्था है। जब ये हमें बुराईयों में लगा सकता है तो क्या हम इसे अच्छाईयों की ओर नहीं लगा सकते? लगा सकते हैं लेकिन केवल बातों से नहीं। इसके लिए हमें संकल्प बल को दृढ़ करना होगा। कायर नहीं कर सकते, कोई शूरवीर ही अपने संकल्प को मजबूत कर सकता है और उसे पूरा कर सकता है पर इसके लिए बहुत कुछ होमना पड़ता है, बहुत बड़ी कुर्बानी देनी पड़ती है तभी साधना फलित होती है और तभी सन्यास घटित होती है।

स्वामी रामतीर्थ के मन में बहुत बार वैराग्य के विचार हिलोरें मारते, मन में आता कि सब छोड़छाड़ के सन्यासी हो जाऊँ पर कुछ ना कुछ कारण बन जाता। एक दिन बाजार से घर को आ रहे थे, देखा–सामने एक नींबू बेचने वाला जा रहा है। नींबू बड़े स्वाद लगते थे उन्हें। फिर मोटे–मोटे रसीले कागजी नींबू ! देखकर एकदम मुँह में पानी भर आया। जेब से कुछ पैसे निकाले और चार नींबू खरीद लिए।

तेज कदमों से चलते हुए घर पहुँचे। मन में उतावलापन है कि – छीलूं और इनका रसपान करूं। पत्नी से कहा – जल्दी नमक, चाकू और प्लेट ला कर दे दे। पत्नी ने लाकर दे दिए और अपने काम में लग गई। इधर स्वामी रामतीर्थ ने फटाफट एक नींबू के चार टुकड़े किए, नमक लगाया, चूसने की तैयारी है, जबान ललचा रही है पर भीतर से आवाज आई – अरे ! तू सन्यासी बनना चाहता है ? अपनी जिह्वा का रस तो तेरे से जीता नहीं जा रहा फिर जीवन को कैसे जीत पाएगा ? विचार आया– चल आज ये ही सही। देख – तू जीतता है या तेरा मन जीतता है ? बस उसी समय नींबू उठा के गली में दे मारे और चिल्लाने लगे – जीत लिया–जीत लिया। पत्नी आई भागी हुई, कहने लगी– अरे ये आपने क्या शोर मचा रखा है ? किसे जीत

लिया ? स्वामी रामतीर्थ ने कहा – मैंने अपने मन को जीत लिया।

उन्होंने जीत लिया अपने मन को। तो क्या हम नहीं जीत सकते ? जीत सकते हैं ? क्यूं नहीं जीत सकते ? कौन कहता है नहीं जीत सकते ? बस हमें अपने संकल्प बल को मजबूत करना होगा। तो कायरता छोड़िये, शूरवीरता अपनाइए और लग जाइए साधना की राह पर, सफलता एक दिन जरूर मिलेगी।

और हां, मन को जीतने का अर्थ ये नहीं कि–आप घर–बार छोड़कर जंगलों में चले जाएं, कि साधु सन्यासी हो जाएं। बाणा (वेष) बदलने से कुछ न होगा जब तक कि बाण यानि आदत न बदलोगे, चोला रंगने से कुछ हाथ न लगेगा जब तक कि मन को प्रभु भक्ति में न रंगोगे।

और जिस दिन मन को रंग लिया फिर आप रहें भले ही संसार में पर तब संसार आपके भीतर नहीं रहेगा। तब आपके कर्म भी आपकी पूजा बन जाएंगे, प्रार्थना हो जाएंगे। तो अंत में बस इसी आशा के साथ कि हे प्रभु ! वो प्रार्थना के फूल हर दिल के आंगन में खिल जाएं...

**ॐ शांति !**

# मन को जीत लेना ही सच्ची विजय

## प्रवचन सार

दुनियाँ को जीत लेना
आसान है
पर अपने मन को
जीत पाना बहुत मुश्किल
है मन को जीतने
वाला ही सच्चा
विजेता होता है।

जो मन से हार गया वो गुलाम बन गया और
जिसने इसे जीत लिया वो बादशाह बन गया
संत तो यही सलाह देंगे
कि–मन के गुलाम नहीं, बादशाह बनों।

पिछले प्रवचन में हम चर्चा कर रहे थे कि – हमें बाणा ही नहीं बदलना ब्लकि बाण यानि आदत को भी बदलना है। क्यूंकि कहा है –

'बाणा बदले सौ–सौ बार, बाण बदले तो बेड़ा पार।'

प्रभु महावीर अपनी अमृत वाणी में फरमाते हैं कि– इस जीवात्मा ने इतनी बार साधु जीवन स्वीकार किया है कि यदि उन वस्त्र–पात्र–उपकरणों को एकत्र किया जाए तो सुमेरू पर्वत से बड़ा ढ़ेर बन जाए।

हो सकता है– आपको ये कल्पना लगे, लेकिन आप केवल शब्दों में मत उलझिए, आप इस बात के भावों को पकड़िए कि – सैंकड़ों क्या, हजारों बार ब्लकि अगर अध्यात्म शैली में कहें तो अनंत बार आप और हम साधु वेष धारण कर चुके हैं। तो प्रश्न उठता है – जब इतनी बार सन्यास मार्ग स्वीकार किया फिर भी कल्याण क्यूं न हुआ ? किसी कवि ने कहा है –

'तन को जोगी सब करें, मन को बिरला कोय।
सहजे सब विधि पाइए, जो मन जोगी होय।।

बस यही तो मुश्किल है। तन से जोग धारण करना कोई बड़ी बात नहीं, उसमें कोई विशेष जोर भी नहीं लगता। वही बात –

'मूंड मुंडाए तीन गुण, सिर की मिट जाए खाज।
खाने को लड्डु मिलें, लोग कहें महाराज।।'

एक भक्त पहुँचा सन्त के पास, कहने लगा–महाराज ! मैं बड़ा दुःखी हूँ। मेरी घरवाली जब नई–नई आई थी, तब चन्द्रमुखी लगती थी, फिर थोड़े दिन बाद उसने सूरजमुखी का रूप धारण कर लिया और अब तो वो पूरी ज्वालामुखी बन चुकी है। कृपा करो कोई मंत्र बता दो, जिससे वो मेरे काबू आ जाए। सन्त कहने लगे–भाई ! वो मंत्र मुझे आता होता तो मैं साधु क्यों बनता ? (यानि मेरे साथ भी यही समस्या थी, तभी तो साधु बन गया) ये तो एक चुटकुला है, चुटकुले का अर्थ आप समझते हैं ना ? जिसमें चोट करने की कला हो, कहने का अभिप्राय– ऐसे साधुओं की जमात तो आज हमारे देश में बहुत इकट्ठी हो चुकी है। पर योग को साधना इतना सस्ता सौदा नहीं है, कोई बच्चों का खेल नहीं हैं।

वो योद्धा, जो बड़े–बड़े संग्राम जीत लेते हैं, शत्रुओं के दांत खट्टे कर देते हैं, बलवान से बलवान दुश्मनों को परास्त कर देना जिनके बाएं हाथ का खेल है.

वही शूरवीर इस मन से मात खा जाते हैं। इसीलिए तो प्रभु महावीर ने कहा है–

"जो सहस सहस्साणं, संगमे दुज्जए जिणे।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ।।"

एक ओर वो योद्धा है जिसने सैंकड़ों – हजारों दुर्जय संग्राम जीत लिए, दूसरी ओर वो साधक है जिसने अपने आपको जीत लिया, क्रोध, मान, माया–लोभ को वश में कर लिया, अपने मन को जीत लिया, प्रभु कहते हैं– दुनियाँ को जीतने वाले योद्धा से वो साधक लाख गुणा श्रेष्ठ है जिसने अपने आप पर विजय हासिल कर ली। उसकी विजय, विजय ही नहीं ब्लकि 'परम विजय' है।

सिकन्दर बादशाह, जिसने दुनियाँ को जीतने के लिए खून की नदियाँ बहा दी, लाखों माताओं की गोद सूनी कर दी, सुहागनों के सिंदूर उजाड़ दिए, करोड़ों बच्चे यतीम बना दिए पर जिंदगी के आखिरी मोड़ पर वो खुद से हार गया। उसके जीवन की हर जीत अंत समय हार में बदल गई।

एक ओर अंग्रेजी शासन है, दूसरी और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हैं। हम अंग्रेजी शासन से क्यूं घृणा करते हैं ? और क्यूं गांधी को याद करते हैं ? क्यूंकि– अंग्रेजों ने भारतीयों के तन पर राज किया और गांधी ने लोगों के मन पर राज किया।

हम तभी दूसरों के मन पर राज कर सकते हैं जब अपने मन पर हमारा राज हो। अपना मन तो हमारे वश में नहीं और हम दूसरों के मन को जीतना चाहें ? ऐसा होना नामुमकिन है, कुछ पल के लिए हो भी जाए पर सदा के लिए वो स्थाई रूप कभी नहीं ले सकता।

आपने ताश खेली होगी ? कितने पत्ते होते हैं ताश में ? बावन ? हाँ– ना तो कर दो ? घबराते क्यूं हो ? और संत दरबार में भी आपकी घबराहट दूर ना हुई तो और कहाँ होगी ? तो ताश के बावन पत्ते, उनमें चित्रों वाले कितने ? बारह। बारह में भी मुख्य होते हैं– तीन। बादशाह, बेगम और गुलाम। ठीक है ना ? मैंने कभी खेली नहीं, केवल पढ़ी–सुनी हुई बात ही कह रहा हूँ। तो तीन तरह के चित्रों वाले पत्ते होते है ताश में। गुलाम, बेगम और बादशाह।

गुलाम कौन है ? जो बेगम से हार गया और बादशाह कौन है ? जिसने बेगम को जीत लिया। आईए – अब अध्यात्म क्षेत्र की ओर चलते हैं– ये मन बेगम के समान है, जो इससे हार गया वो गुलाम बन गया और जिसने इसको जीत लिया वो बादशाह बन गया। तो भाई, सन्त तो यही सलाह देंगे कि गुलाम नहीं, बादशाह बनो।

# 'मन' को 'नम' कर दें

## प्रवचन सार

बीज जब मिट्टी में
अपनी हस्ती मिटा देता है
तभी वो अनंत गुणा होकर
पुष्पित-पल्लवित होता है।
ऐसे ही आप भी समर्पित
कर दो अपने आप को, फिर
देखना जीवन में कैसे
फूल खिलते हैं!

मन का बादशाह बनने के लिए हमें
सद्गुरु का गुलाम बनना होगा उनके चरणों
में अपने आपको समर्पित करना होगा।

# 9

हम चर्चा कर रहे थे कि– हमें मन का गुलाम नहीं बादशाह बनना है। पर ये भी याद रखो– बादशाह बनने के लिए पहले आपको गुलाम बनना होगा। आप कहेंगे– महाराज ! आप भी कमाल करते हो, कभी कहते हो बादशाह बनना है और कभी कहते हो गुलाम बनना है ? ये भी अजीब पहेली है ?

बंधुओ ! ये पहेली नहीं, ब्लकि वास्तविक्ता है। देखने में दोनों बातें आपको विपरीत लग रहीं होंगी, दोनों में विरोधाभास मालूम पड़ रहा होगा परन्तु हैं दोनों एक ही सिक्के के दो पहलु। कैसे ? आइए इसे समझें :–

ये तो ठीक है कि हमें अपने मन को वश में करना है, इसका बादशाह बनना है पर मन का बादशाह बनने के लिए हमें सद्गुरू का गुलाम बनना होगा। सद्गुरू के चरणों का दास बनना होगा। अपने आपको उन चरणों में समर्पित करना होगा। अपनी हस्ती को मिटाना होगा।

जो बीज मिट्टी में अपनी हस्ती मिटा देता है वही एक दिन वृक्ष के रूप में अनंत गुणा होकर पुष्पित–पल्लवित

होता है। इस मन को काबू करना है ना ? तो इसे उल्टा कर दो। 'मन' का क्या बन जाएगा ? 'नम', बस सद्गुरु के चरणों में नम जाओ, भर जाओगे, सब कुछ पा जाओगे।

"मिटा दे अपनी हस्ती को, गर कुछ मर्त्तबा चाहे।
कि दाना खाक में मिलकर-गुले गुलजार होता है।।"

आप कहेंगे- महाराज ! हम तो मंदिर क्या, मस्जिद क्या, गुरूद्वारे-चर्च, हर जगह सर झुकाते हैं। हां, आप सर झुकाते हैं, पर केवल 'सर' ही झुकाते हैं, दिल नहीं झुकाते। जिस दिन दिल भी झुक गया फिर-

इधर मंदिर, उधर मस्जिद,
इधर गुरूघर, उधर गिरजा।
इधर गिर जा या उधर गिर जा,
है तेरी मर्जी, जिधर मर्जी गिर जा।।

राज़ा जनक ने उद्घोषणा करवाई कि- मैंने गुरु बनाना है और आप जानते हो दुनियाँ में आज हर कोई ही गुरु बनना चाहता है। पर हम भूल जाते हैं- बेटा बने बिना कोई बाप नहीं बन सकता और चेला बने बिना कोई गुरु भी नहीं बन सकता। राजा जनक ने जब उद्घोषणा करवाई तो निश्चित तिथि पर बड़े-बड़े विद्वान, पण्डित, पुरोहित, ऋषि-महर्षि पहुँच गए, दरबार ठसाठस भर गया।

उधर महर्षि अष्टावक्र, जिनके जन्म से ही आठों अंग टेढ़े-मेढ़े थे। उन्होंने भी सुना तो अपनी माता से कहने

दरबार में जाऊंगा। माँ ने कहा– बेटा ये मुंह और मसूर की दाल ? तूं अपने शरीर को तो देख ! तूं क्या बनेगा राजा जनक का गुरू ? वहाँ तो बड़े–बड़े महारथी पहुँचे हुए हैं।

पर अष्टावक्र ने जब ज्यादा ही जिद्द की तो आप जानते हैं दुनियाँ में बाल हठ प्रसिद्ध है। बड़े–बड़ों को उसके आगे झुकना पड़ जाता है। फिर वो तो बेचारी माँ थी। उसे वो सब कुछ करना पड़ा, जो बेटे ने कहा था। आखिर महर्षि अष्टावक्र तैयार होकर गिरते–पड़ते किसी तरह राजा जनक के दरबार में पहुँच गए।

जब विद्वानों ने उन्हें देखा तो सबके सब हँसने लगे–अरे देखो ! ये भी राजा जनक का गुरू बनने आया है। महर्षि अष्टावक्र विचार करते हैं– नहले को दहला जीतता है, चुप रहने से काम नहीं चलेगा, उन्होंने भी एक ऐसा जोरदार ठहाका मारा कि– सारा दरबार गूंज उठा। और राजा जनक को भी हंसी आ गई।

महर्षि अष्टावक्र ने प्रश्न किया– राजन ! आप क्यूं हंसे ? राजा ने प्रतिप्रश्न कर दिया कि– महर्षि आप क्यूं हंसे ? अष्टावक्र ने कहा– राजन ! प्रश्न पहले मैंने किया है। राजा जनक ने कहा– महाराज ! क्षमा करना, सत्य कड़वा होता है। मैं इसलिए हंसा, मैंने सोचा– **'सूई बोले तो बोले पर छलनी भी बोले'** (जिसके सिर में सौ छेद) यानि ये विद्वान आपके टेढ़े–मेढ़े शरीर को देखकर हंसे सो तो ठीक,

पर आप भी हंसे ? बस यही सोच कर मुझे हंसी आ गई। महर्षि अष्टावक्र ने कहा– अब मेरी बात भी सुनो जरा–

'समझ करके मैं आया था, सभा है समझदारों की।
मगर गलती मेरी निकली, ये महफिल है चमारों की।।'

राजन ! मैं तो ये सोच कर आया था कि– राजा जनक ने गुरू बनाना है, बड़े–बड़े विद्वान आए होंगे, मुझे भी उनके दर्शन हो जाएंगे पर यहाँ देखा तो वही बात 'ऊँची दुकान, फीके पकवान' समझदार तो दूर, यहाँ तो सबके सब चमार भरे पड़े हैं।

वहाँ जितने भी पण्डित–पुरोहित थे वो सब बौखला गए कि इसकी इतनी हिम्मत ? हमें चमार कहता है ? महर्षि अष्टावक्र ने कहा– देखो ! गर्मी से नहीं थोड़ा नरमी से काम लो। सीधी सी बात है जो सोने की परख करे वो सुनार और जो चाम की परख कर वो ..... चमार। आपने मेरे शरीर को देखा, मेरे ज्ञान को नहीं जाना। ज्ञान का संबंध शरीर से नहीं आत्मा से होता है। सब निरुत्तर हो गए। सभा में सन्नाटा छा गया।

सभा के सन्नाटे को तोड़ते हुए राजा जनक ने कहा– जैसा कि आप सबको पता है, मैंने गुरू बनाना हैं। पर मेरी एक शर्त है। मेरा एक पैर घोड़े की रकाब पर होगा और दूसरा पाँव उठाकर ज्यूं ही मैं घोड़े की काठी पर सवार होऊं, इतने कम समय में जो मुझे आत्म ज्ञान की राह बता दे, उसी

को मैं अपना गुरू मान लूंगा।

सब विद्वान एक- दूसरे का मुंह ताकने लगे। आखिर महर्षि अष्टावक्र ने ये चुनौती स्वीकार कर ली। राजा का एक पैर रकाब पर है, दूसरा पांव उठाकर ज्यूं ही घोड़े की काठी पर बैठने लगा, महर्षि अष्टावक्र ने कहा- 'मन दो।' राजा घोड़े से नीचे उतर आया। पूछा- महाराज ! आपने क्या कहा था, मेरी समझ नहीं आया। अष्टावक्र ने कहा- भाई चाहे समझ आया या नहीं आया, उसमें मेरा क्या कसूर ? मैंने तो अपना काम पूरा कर दिया, तुम्हें आत्म ज्ञान की राह बता दी। हार कर राजा ने कहा- ठीक है महाराज ! मैं आपको 'गुरू' रूप में स्वीकार करता हूँ, अब तो बता दो ! महर्षि अष्टावक्र ने कहा- राजन ! मैंने कहा था- मन दो यानि जिस शिष्य ने अपना मन गुरू को समर्पित कर दिया तो उसके जो अहंकार की, अभिमान की दीवार है, वो टूट जाएगी और आत्म ज्ञान उसके भीतर स्वतः प्रकट हो जाएगा। तन समर्पित करने वाले शिष्य तो बहुत हैं लेकिन आज आवश्यकता है- एकलव्य, आरूणी, गौतम, आनंद, बाला और मर्दाना की तरह गुरू के प्रति अपना मन समर्पित करने वाले शिष्यों की।

बस आज इतना ही। शेष फिर ....

# गुरू राह दिखा सकते हैं, चलना हमें स्वयं ही होगा

## प्रवचन सार

जन्म से कोई व्यक्ति बड़ा नहीं होता, बड़ा होता है– अपने कर्म से। जीवन कितना जीए, इस बात का मूल्य नहीं, मूल्य इस बात का है कि– जीवन को कैसे जीए ?

दवाई चाहे कितनी ही अच्छी क्यूं ना हो, लेकिनं जब तक उसका सेवन नहीं किया जाता वो रोग दूर नहीं कर सकती। ऐसे ही जब तक गुरू वाणी का जीवन में आचरण न किया जाए तब तक आत्म कल्याण होना भी संभव नहीं।

# 10

किसी गाँव में एक बहुत बड़ा अधिकारी आया, स्वागत सभा का आयोजन हुआ। बच्चे, जवान, बूढ़े, पुरूष–महिलाएँ सभी आये। उस अधिकारी ने एक छोटे से बच्चे से पूछा– बेटा! तुम्हारे गाँव में क्या कोई बड़ा आदमी पैदा हुआ है? उस बच्चे ने बहुत ही सुन्दर जवाब दिया कि ''अंकल! हमारे गाँव में बड़ा आदमी तो कभी भी, कोई भी पैदा नहीं हुआ, सब छोटे ही पैदा हुए हैं लेकिन उन्होंने अपने जीवन में कुछ ऐसे काम किए कि –वे बड़े बन गए।''

बिल्कुल सही कहा उस बालक ने। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, नानक या दुनियाँ के जो भी महापुरूष हुए हैं, ऐसा नहीं कि उन्होंने किसी अलग ढंग से जन्म लिया था। जन्म तो उनका भी आपकी और हमारी तरह ही होता है लेकिन जीवन को कुछ इस ढंग से जीते हैं कि वे युगों–युगों के लिए चिरस्मरणीय बन जाते हैं। चिरस्मरणीय ही नहीं बल्कि सदा के लिए 'अमर' हो जाते हैं और आने वाली अनेकों पीढ़ीयों के लिए वे श्रद्धा एवं आस्था के केन्द्र बन जाते हैं।

तो भूमिका को ज्यादा विस्तार न देते हुए मैं अपनी बात पर आ रहा हूँ कि – जिस प्रकार हर बीज में वृक्ष बनने की सम्भावना होती है इसी प्रकार हर आत्मा में परमात्मा बनने की क्षमता होती है। आवश्यकता है तो बस अपने इस मन को मुक्ति की राह पर मोड़ देने की ।

पिछले प्रवचन में हम चर्चा कर रहे थे– गुरू के प्रति समर्पित होने की। लेकिन बात केवल यही तक पूरी नहीं हो जाती। ये तो ठीक है कि गुरू पथ प्रदर्शक होते हैं परन्तु गुरू केवल राह ही दिखा सकते हैं, मार्ग ही बता सकते हैं, उस पर चलने का जो श्रम है वह तो हमें स्वयं को ही करना होगा। क्यूंकि जिस प्रकार बारिश होने पर भी वो मटके नहीं भर सकते जो उल्टे रखे हों। इसी तरह गुरू की रहमत चाहे दिन–रात बरसती रहे पर यदि कोई उस गुरू कृपा का लाभ नहीं उठाता तो फिर जीवन का कल्याण किसी अवस्था में नहीं हो सकता। किसी कवि ने इस भाव को बड़े ही सुन्दर शब्दों में पिरोया है :–

**"दीनी पर लागी नहीं, रीते चूल्हे फूक।**
**गुरू बेचारा क्या करे, जब चेले में हो चूक।।"**

इस दोहे में कवि ने कितनी कुशलता के साथ अपनी बात प्रस्तुत की है। उसने उपमा दी कि– जैसे चूल्हे में लकड़ी ना हो या आज की भाषा में कहूं – सिलेंडर में गैस ना

हो तो कितनी ही फूंकें मारें या लाईटर दबाएं, आग नहीं जल सकती। ऐसे ही गुरू चाहे अपने जीवन का सारा ज्ञान शिष्य को प्रदान कर दें लेकिन जब तक़ वह उस ज्ञान का अपने जीवन में आचरण नहीं करता तब तक उसके भीत्र वो परम ज्योति प्रकट नहीं हो सकती।

इसी संदर्भ में मुझे एक प्रसंग याद आ गया। एक सिख भाई ने ग्रंथी से अमृत चखा यानि नामदान लिया तो ग्रंथी ने उसे श्री गुरू ग्रंथ साहब जी की एक पंक्ति दे दी :–

"गुरू सिख दे बंधन काटे"

अर्थात् गुरू, शिष्य के बंधन काट देता है। उस व्यक्ति ने इस लाईन का रट्टा मार लिया। अब तो क्या घर, क्या दुकान, हर जगह इसी का उच्चारण करता। जब तोलने लगता तो बीच में ही डंडी मार देता, कपड़ा नापने लगता तो गज सरका देता और मुँह में एक ही बात कि– गुरू सिख दे बंधन काटे। कुछ लोगों ने जाकर ग्रंथी से शिकायत कर दी कि महाराज आपने उसे अच्छा नामदान दिया, पहले तो वह लोगों की जेबें ही काटता था पर अब तो सरेआम लोगों के गले काटता है। उसकी धोखाधड़ी इतनी बढ़ चुकी है कि वह दिन के उजाले में ही लोगों की आँखों में धूल झोंक रहा है। ऐसे तो धर्म और गुरू बदनाम हो जाएंगे, आप जरा उसे बुलाकर समझाओ।

ग्रंथी ने सोचा– बात तो ठीक है। उसने उस श्रद्धालु भाई को बुलाया और पूछा कि – मैं इस तरह से आपके बारे में शिकायत सुन रहा हूँ, क्या ये ठीक है ? वो व्यक्ति भी बड़ा पक्का था, कहने लगा– महाराज! ठीक–गलत तो जाने दो, मुझे तो गुरूवाणी का जो वाक्य आपने दिया था, मैं तो उसी को अपना जीवन मंत्र मानकर चल रहा हूँ। आपको याद होगा– मुझे आपने एक छोटी–सी पंक्ति का दान दिया था कि – गुरू सिख दे बंधन काटे। तो अब भला बताइये कि मुझे किस बात की चिन्ता है ?मेरे बंधन तो गुरू महाराज काट ही देंगे। फिर किस बात का डर है ? ग्रंथी ने कहा – अरे भले आदमी इसमें तो कोई शक नहीं कि गुरू सिख के बंधन काटे पर जरा अगली लाईन पर भी ध्यान दे –

"गुरू सिख दे बंधन काटे,
गुरू दा सिख, जे विकार ते हाटे"

अर्थात् गुरू शिष्य के बंधन काटता है, पर कब ? जब शिष्य विकारों से, पापों से, बुराईयों से हट जाता है। वो व्यक्ति ये सुनकर कहने लगा कि क्या सारा उपदेश मेरे लिये ही है ?अगली लाईन किसी और को दे देना। उस ग्रंथी ने अपना माथा ठोक लिया।

अब जरा आप ही विचार कीजिए– क्या ऐसे व्यक्तियों का कल्याण होना सम्भव है ? ग्रंथी की तो औकात

ही क्या, यदि स्वयं बुद्ध, महावीर या नानक भी आ जाएं तो भी ऐसे लोगों का कल्याण हो पाना असम्भव ही है। क्यूंकि डॉक्टर चाहे कितना भी बड़ा क्यूं न हो और दवाई चाहे कितनी ही मंहगी क्यूं ना हो, जब तक रोगी दवाई का सेवन नहीं करता तब तक उसका रोग दूर नहीं हो सकता। संत-महापुरूषों की वाणी चाहे वह गीता के रूप में हो या ग्रंथ के रूप में, चाहे पुराण के रूप में हो या कुरान के रूप में, उस वाणी रूपी औषधि में हमारे कर्म रोग को दूर करने की शक्ति तो है पर वो रोग तभी दूर हो पाएंगे जब हम उसका सेवन करेंगे यानि उन शिक्षाओं तथा उपदेशों का पालन करेंगे।

तो मेरे कहने का तात्पर्य है कि – गुरू केवल गुर बता सकते हैं, उपाय सिखा सकते हैं, युक्ति समझा सकते हैं लेकिन उनका प्रयोग और उपयोग तो आपको ही करना होगा। तभी आपकी साधना सिद्धी तक पहुँच पाएगी और तभी ये मन आपको मुक्ति के उस परम द्वार तक ले जा सकेगा।

बस, आज इतना ही....

# मन साधन है, सर्वोच्च शक्ति है – आत्मा

## प्रवचन सार

सीढ़ियों के द्वारा ऊपर भी जाया जा सकता है और नीचे भी। बस अवस्था मन की है। इसके द्वारा जीवन का उत्थान भी हो सकता है तो पतन भी ।

अच्छे अथवा बुरे कर्म करने का साधन है– हमारा मन। पर मूल शक्ति तो आत्मा ही है।

कुदरत ने इन्सान को दो पांव दिए हैं। वह इस बात में स्वतन्त्र है कि – चाहे वह दायां पांव उठाए या बायां पांव। लेकिन एक पांव उठाने के बाद वो पछताए कि–मुझे तो दूसरे वाला पांव उठाना चाहिए था तो उसका कोई उपाय नहीं है क्यूंकि जो कदम उठाना था वो उठा लिया और यदि दूसरा भी साथ ही उठाएगा तो गिर जाएगा।

तो मेरे कहने का भाव– इस बात में तो हम स्वतन्त्र हैं कि –अपने मन को चाहे हम अच्छे मार्ग पे लगा लें या बुरे रास्ते पर। और जो हम चर्चा कर रहे थे पिछले प्रवचन में कि– गुरू केवल राह दिखा सकते हैं, हमें बता सकते हैं कि– ये धर्म का रास्ता है और ये अधर्म का, ये पापों का रास्ता है और ये पुण्यों का, मोटी भाषा में कहूं तो– ये अच्छाईयों का रास्ता है और ये बुराईयों का। पर चलना किस राह पर है, ये फैंसला तो हमें ही करना होगा। आएँ पहले एक छोटी सी चर्चा कर लें, फिर आगे की बात करेंगे।

चर्चा है– मन की कार्य प्रणाली के संदर्भ में। पहले भी इस विषय में हमने बात की थी। बात तो अध्यात्म क्षेत्र की है लेकिन उसे समझाने के लिए मुझे आपकी दुनियां के उन शब्दों और प्रतीकों को लेना पड़ता है जो आपसे चिर परिचित हों, आपके जाने–पहचानें हों। हम अपने देश की शासन प्रणाली को ही लें– हमारे देश का सर्वोच्च अधिकारी राष्ट्रपति होता है उसके नीचे प्रधानमंत्री और फिर मंत्रीमण्डल। मंत्रीमण्डल आपस में प्रस्ताव पास करके प्रधानमंत्री को भेजता है और प्रधानमंत्री फिर राष्ट्रपति को पेश करता है।

अब आएं अध्यात्म की ओर चलते हैं – हमारा ये आत्मा राष्ट्रपति के समान है, मन प्रधानमंत्री की तरह और इन्द्रियाँ मंत्रीमंडल की तरह हैं। जरा से संगीत की झंकार सुनी नहीं कि –कान फौरन खड़े हो जाते हैं, कोई सुन्दर सा चेहरा सामने से निकला कि– आंखें झट वहीं चिपक जाती हैं, जहां कोई मीठी सी महक नासिका से छुई नहीं कि तुरन्त ध्यान उधर ही खिंचा चला जाता है, चटपटे व्यंजन दिखते ही जिव्हा ललचा जाती है और नरम–नरम गद्दे, तकियों का स्पर्श पाकर दिल उन्हें छोड़ने को नहीं करता।

ये इन्द्रिय रूपी मंत्रीमंडल अपने–अपने प्रस्ताव मन रूपी प्रधानमंत्री के पास भेज देता है और मन वो

प्रस्ताव फिर आत्मा रूपी राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत कर देता है। अब ध्यान देने की बात यह है कि – आत्मा उस पर क्या प्रतिक्रिया करता है ?क्योंकि सारा कुछ उसी की कार्रवाई पर ही निर्भर करता है। यदि वह अपने विवेक से काम लेता है तो निर्णय ठीक होता है और यदि प्रधानमंत्री एवं मंत्रीमंण्डल के दबाव में आ जाता है तो निर्णय ठीक होने की सम्भावना बहुत कम होती है क्योंकि इस मन और इन्द्रियों की गति अधिकतर पतन की ओर ज्यादा होती है।

ऊपर की चर्चा से ये तो आपको स्पष्ट हो गया होगा कि – ये 'मन' आत्मा और इन्द्रियों को जोड़ने वाली बीच की कड़ी है और इन्द्रियाँ अक्सर मन के इशारे पर ही नाचती हैं। लेकिन मन की दो धाराएँ हैं– ये इन्द्रियों का बहुमत होने के कारण कई बार आत्मा को भी नचा देता है और जब आत्मा अपने स्वरूप में होती है तो इस मन को स्वयं नाचने पर भी मज़बूर होना पड़ जाता है।

कहने का भाव ये हुआ कि – सर्वोच्च शक्ति तो आत्मा ही है क्योंकि जो मन है वो अपने आप में जड़ है। आत्मा की ऊर्जा के कारण ही इस मन में मनन शक्ति पैदा होती है। उसका चिन्तन–मनन शुभ भी हो सकता है और अशुभ भी। तो जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ शुभ अथवा अशुभ, अच्छा या बुरा वैसे तो मन और इन्द्रियों पर निर्भर

करता है लेकिन गहराई से सोचें तो इसका मूल कारण हमारा अपना आत्मा ही है।

प्रभु महावीर ने अपनी वाणी में भी यही कहा है कि– हे जीवात्मा! तूं स्वयं ही अपना मित्र भी है और शत्रु भी। मन तो केवल साधन मात्र है। जैसे सीढ़ियों को ही लीजिए, ना ये किसी को ऊपर ले जाती हैं और ना ही किसी को नीचे की ओर। हो सकता है आपके मन में तर्क उठे क्यूंकि मुझे पता है आप लोग बाल की खाल निकालने में हर समय तैयार रहते हैं, सीधी बात आपके दिमाग में घुसे या ना घुसे लेकिन उल्टी बात सुनते या पढ़ते ही आपकी खोपड़ी में उछल–कूद मच जाती है और इसीलिए कभी–कभी मुझे उल्टी ही बातों के माध्यम से अपने भाव आपके सामने लाने पड़ते हैं।

तो हम बात कर रहे थे सीढियों की, कि – ना वे ऊपर ले जाती हैं और ना ही नीचे। लेकिन आप ये तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं कि महाराज वो जमाना लद गया, अब तो सीढ़ियाँ ऊपर भी ले जाती हैं और नीचे भी। क्योंकि साईंस ने अब इलैक्ट्रेसिटी से चलने वाली एटोमेटिक सीढ़ियों का आविष्कार कर लिया है। चलो हम आपकी ही बात मान लेते हैं लेकिन गहराई से सोचें तो सीढ़ियाँ मात्र सीढ़ियाँ ही हैं, वे केवल साधन ही हैं। क्यूंकि ऊपर या नीचे आखिर जाना तो हमारे ही हाथ की बात है ना ?

यही बात मन की है, वह भी केवल साधन ही है, वह ना हमें बुराईयों की ओर ले जा सकता है और ना ही अच्छाईयों की ओर। वह तो एक सहयोगी की तरह है। उससे आप जैसा भी सहयोग लेना चाहें, ले सकते हैं। तो निष्कर्ष यह निकला कि – बुराई या अच्छाई की तरफ जाना, न जाना हमारे ऊपर ही निर्भर है। तो फिर देर किस बात की ?यदि उस परम धाम तक, मुक्ति के उस दिव्य द्वार तक पहुँचना चाहते हैं तो अपने इस मन को अशुभ से शुभ की ओर मोड़ दीजिए, फिर एक दिन आप निश्चय ही उस शुद्ध स्वरूप को उपलब्ध हो जाएगें .....

# मन को वश करने के कुछ मनोवैज्ञानिक उपाय

## प्रवचन सार

हीरे मिल जाएँ तो
कांच के टुकड़े छोड़ने
का दुःख नहीं होता।
आनंद की झलक मिल
जाए तो ये सांसारिक
सुख तुच्छ लगते हैं।

सद्भाव से जिस दिन आप साधना की झील में उतर पड़े, उस दिन आप पाएंगें कि– आपके जीवन में आनंद के फूल खिलने लगे।

हमारे यहां एक बड़ा ही प्रसिद्ध दोहा है–

"धीरे–धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।।"

अर्थात हमें धैर्य से काम लेना चाहिए, किसी भी काम में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए, क्यूंकि हर काम का एक समय होता है। माली बीज बोने के बाद ये सोचे कि– ये आज ही वृक्ष बन जाए या इस पर मीठे–मीठे फल लग जाएं, तो ऐसा सम्भव नहीं है। एक ऐसा बच्चा, जिसका अभी जन्म ही हुआ है उसे हम लाख बुलाना चाहें, लाख चलाना चाहें लेकिन वो बोल और चल नहीं सकता। क्यूंकि अभी वो परिपक्व नहीं हुआ।

यही बात धर्म के संबंध में भी है। लोग चाहते हैं– एक माला फेरें और हमारे सब दुःख दूर हो जाएं, सब मनोकामनाएं पूर्ण हो जाएं, अगर ऐसा नहीं होता तो इसका मतलब ये हुआ कि – धर्म में, भगवान के नाम में कोई शक्ति है ही नहीं।

हमारे यहां आयुर्वेदिक और होम्योपेथिक दवाई को लोग कम पसन्द करते हैं क्यूंकि वो कुछ समय लेती हैं और अगर किसी मर्ज़ को जड़ से मिटाना हो तो समय लगना स्वाभाविक ही है। पर आज का जो साईंस युग है, न्यू जनरेशन है वो चाहती है कि हमें तुरन्त रिजल्ट मिल जाए और इसीलिए एलोपेथिक दवाईयों का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। मैं कोई आक्षेप या आलोचना नहीं कर रहा हूं, केवल एक एग्ज़ाम्पल के तौर पर समझा रहा हूँ।

कुछ लोग तो यहां तक प्रश्न कर देते हैं कि – महाराज! जब हम रसगुल्ला मुँह में डालते हैं तो हमें कोई धैर्य नहीं रखना पड़ता, ना ही कोई इंतजार करना पड़ता है, उसकी मिठास तभी अनुभव हो जाती है, तो जो हम धर्म क्रियाएं करते हैं, क्या उनका फल हमें उसी समय नहीं मिल सकता ?सन्तजन कहते हैं, गीता में भी कहा है – तुम कर्म करो, फल की इच्छा मत करो, इस जन्म में सुख नहीं मिला तो काई बात नहीं, अगले जन्मों में तुम्हें स्वर्गों के दिव्य सुख प्राप्त होंगें। पर महराज! अगला जन्म किसने देखा ?

और इससे बड़ी मूर्खता क्या होगी कि– जो सुख मिल रहे हैं उन्हें छोड़कर, शेख चिल्ली की तरह अगले जन्मों के सुखों के सपने देखें। महाराज! थ्योरिकल तो हम बहुत

कुछ सुन चुके, अब तो हमें प्रैक्टिकल चाहिए।

हां, बात तो तुम्हारी बिल्कुल ठीक है। मैं पूरी तरह सहमत हूं तुम्हारी सोच से, पर अभी तुम्हारी सोच में थोड़ी सी कमी है, थोड़ा सा अधूरापन है। तुम कहते हो– इस सुख को छोड़ने की बात और उस सुख को पाने की बात।

लेकिन सुख का तो यहां सवाल ही नहीं है। क्यूंकि जहां सुख होगा, वहां कहीं न कहीं दुःख भी होगा। प्रकाश का अर्थ ही ये है कि – कभी न कभी अंधकार रहा होगा। तो मैं ना इस सुख को पाने की बात करता हूं, ना उस सुख को पाने की। मैं बात करता हूं आनंद की क्यूंकि इसका उल्टा शब्द ढूंढ पाना बड़ा मुश्किल है।

और जब आनंद की बात होती है, जब उसकी प्राप्ति का उपाय हमारे हाथ लग जाता है तो इस संसार के सुखों को छोड़ना नहीं पड़ता बल्कि वे स्वयं ही छूट ही जाते हैं। इसमें बड़ा फर्क है, थोड़ा समझ लेना – जैसे एक आदमी के हाथ में कांच के कुछ टुकड़े हैं, वो चला जा रहा है, देखता क्या है–सड़क के किनारे हीरों का ढेर पड़ा है, अगर वो समझदार होगा तो क्या करेगा ?तुम सोच सकते हो ना ?वो कांच के टुकड़ों को छोड़ेगा नहीं, बल्कि वो उससे छूट ही जाएंगे और उनके छूटने में उस व्यक्ति को कोई दुःख भी

नहीं होगा अपितु एक खुशी होगी उसके दिल में कि–चलो बोझ घट गया, मैं हल्का हो गया।

तो हीरों का ढेर तो तुम्हारे भीतर लगा ही हुआ है पर तुम्हारा मन अभी कांच के टुकड़ों में ही सुख मान रहा है। तुमने जो प्रश्न किया, वो बिल्कुल ठीक किया, लाख बार सुन चुके हैं कि – मन को वश में करो, मन को काबू करो, पर करें कैसे ?

जब भी ध्यान करने बैठते हैं, जब भी माला लेकर बैठते हैं, ये और ज्यादा उछल–कूद मचाता है। दुनियांदारी की कोई बात, घर गृहस्थी का कोई काम भूल गए हों, हजार कोशिश करो, नहीं याद आता पर माला लेकर बैठ जाओ, फौरन याद आ जाता है क्यूंकि मन बड़ा चालाक है, वो किसी न किसी जाल में आपको उलझाए रखना चाहता है। तो इसे काबू करने के कुछ प्रैक्टिकल तरीके, उन्हीं की बात आज में करने चला हूं:–

1. <u>स्वांस प्रेक्षा</u> :– मन को वश करने का ये सबसे बेजोड़ और प्रभावशाली तरीका है। पर ये जितना सरल है, उतना ही कठिन भी है। कठिन तो यूं कि– इसमें साधक का अहकार टूटता है। और जब अहंकार टूटता है तो अक्सर साधकों को ऐसा लगता है कि वे स्वयं ही टूट

रहें हैं, उनकी हस्ती ही मिट रही है। तो बड़ी तकलीफ होती है। लेकिन मेरे प्यारे मत भूलो कि–जब बीज टूटता है, तभी वृक्ष बनता है, जब नदिया अपने आपको मिटाने को राजी हो जाती है, तभी वो सागर बन पाती है। और सरल इसलिए है कि इसमें कुछ भी नहीं करना, केवल अपने स्वांस पर ध्यान एकाग्र करना, है कि – सांस आ रही है, जा रही है। जब कभी क्रोध आए, वासना हावी होने लगे आप अपनी स्वांस पे ध्यान देना। यदि उस समय आपकी स्वांस नार्मल हो जाए तो आप देखेंगे कि – क्रोध का भाव, वासना का आवेग धीरे–धीरे शांत हो रहा है। इसी तरह जब आप ध्यान करने बैठें, माला–जप करने बैठें तो स्वांस पर विशेष ध्यान रखें। उससे आपकी एकाग्रता बढ़ेगी और जब आप इस स्वांस प्रेक्षा का निरन्तर अभ्यास करते जाएंगे तो एक दिन भेद विज्ञान की अवस्था को उपलब्ध हो जाएंगे, तब आपको स्वयं ये आभास होने लग जाएगा कि– शरीर अलग है और आत्मा अलग है। इसी को विपश्ना भी कहा जाता है। तो स्वांस प्रेक्षा बड़ा मनोवैज्ञानिक उपाय है, इसे कभी भी, कहीं भी किया जा सकता है। इसके द्वारा ब्लैड प्रेशर, हार्ट

अटैक आदि बीमारियों से भी राहत मिलती है और टेंशन डिप्रेशन आदि भी दूर होते चले जाते हैं।

2. <u>सैल्फ गाईडेंस</u> :- एकांत स्थान में ध्यान की अवस्था में बैठ जाएं और अपने आपको सकारात्मक सुझाव दें कि- मैं स्वस्थ हूं, मेरी चिंताएं समाप्त होती जा रही हैं, मेरी विल पावर यानि आत्म बल बढ़ रहा है। आप बहुत शीघ्र इसके सकारात्मक परिणाम पाएंगे। साईक्लॉजी, सारा मनोविज्ञान ही इसी पर टिका हुआ है। तो इसमें आप स्वयं को सुझाव दें, बार-बार सुझाव दें।

3. <u>ॐकार का गुंजन</u> : ये ठीक है कि ध्यान कोई क्रिया नहीं है लेकिन फिर भी ध्यान को साधने के लिए हमें पहले एसकी कुछ प्रक्रियाओं से गुजरना होता है। उन्हीं प्रक्रियाओं में से एक है- ओंकार के गुंजन की। कानों को बंद करके यदि इसे किया जाए तो इसका फल द्विगुणित हो जाता है। यह भ्रामरी प्राणायाम का ही रूप है।

4. <u>सद्ग्रन्थों का अध्ययन</u> :- हमारे यहां एक शब्द प्रचलित है- शास्त्र। जो हमें शिक्षित बना दे तथा मन पर शासन करने की कला सिखा दे वास्तव में वही

शास्त्र है और वो केवल शास्त्र ही नहीं, बल्कि धर्म शास्त्र है, तो ऐसे धर्म ग्रन्थों का ज्यादा से ज्यादा अध्ययन कीजिए। जब आप इनका अध्ययन करेंगे तो आपको ज्ञान होगा, संसार की असारता का भान होगा कि – विषय–वासना के कीचड़ में तो इतने जन्म गंवा दिए कभी ये मन तृप्त न हुआ, अब थोड़ा साधना में भी मन लगा कर देखें और जिस दिन आप इस भाव के साथ साधना की झील में उतर पड़े और लगे रहे मार्ग पे, बढ़ते रहे इस राह पे, तो वो दिन भी दूर नहीं जब आपके जीवन में आनंद के फूल खिल उठेंगे।

मैं समझता हूं – जो कुछ इस विषय में मैं कहना चाहता था, वो मैं कह चुका हूं, सफर के लिए इतनी सामग्री काफी है। तो अंत में इतना ही कहकर अपनी बात पूर्ण करना चाहूंगा कि – आपकी यात्रा शुभ हो। यही मेरी हार्दिक मंगलकामना है।

**ॐ शान्ति !**

है समय नदी की धार कि जिसमें सब बह जाया करते हैं,
है समय बड़ा बलवान प्रबल पर्वत झुक जाया करते हैं।
अक्सर दुनियां के लोग समय में चक्कर खाया करते हैं-
लेकिन कुछ ऐसे होते जो इतिहास बनाया करते हैं।।

पू. प्रवर्त्तक
श्री अमर मुनि जी म.

युवा मनीषी
श्री वरूण मुनि जी म. 'अमर शिष्य'

अध्यात्म साधना के क्षेत्र में अधिकतर साधकों की सबसे जटिल और मुख्य समस्या यदि कोई होती है तो वो है- 'मन की चंचलता को कैसे वश में किया जाए?' बस इसी प्रश्न का उत्तर प्रदान करती है- प्रस्तुत पुस्तक।

जिसमें जैन धर्म दिवाकर अध्यात्म युग पुरूष प्रवर्त्तक प्रवर श्रद्धेय गुरूदेव श्री अमर मुनि जी महाराज साहब के मन से संबधित कुछ अमृत प्रवचनों का संकलन किया गया है। मुनि श्री ने जैन आगम, गीता, पुराण, उपनिषद् आदि विभिन्न धर्मग्रंथों की वाणी को बड़े ही सरल शब्दों के माध्यम से व्यक्त किया है।

और अमर गुरूदेव की उस अमरवाणी को जन-जन तक पहुंचाने का उपकार किया है प्रस्तुत पुस्तक के संपादक ललित लेखक श्री वरूण मुनि जी महाराज ने। उन्होंने मुख्य रूप से एक ही बात पर जोर दिया है और वह है-पुस्तक की भाषा शैली। पुस्तक पढ़ते हुए पाठकों को ऐसी अनुभूति होती है जैसे कि हम स्वयं गुरूदेव श्री के सम्मुख बैठे हों और वो बातचीत के रोचक ढ़ंग से हमारी समस्याओं के समाधान की ओर अंगुली थाम कर हमें ले जा रहे हों।

प्रकाशक